प्रत्ययवाद का खंडन (Refutation of Idealism)

(i) भूमिका

मूर ने अपने दार्शनिक जीवन के प्रारंभिक चरण में ही बड़े सबल ढंग से प्रत्ययवाद का खंडन किया था। उस समय प्रत्ययवादी विचारधारा (Idealism) अपनी प्रमुखता के शिखर पर थी। मूर उससे सर्वथा विपरीत सहज-ज्ञान के अनुरूप वास्तववादी विचार के पोषक थे। अतः उन्हें यह अनिवार्य प्रतीत हुआ कि वे प्रत्ययवाद का खंडन करें। उन्होंने बड़े ही समर्थ और मौलिक ढंग से एक इसी नाम के लेख के माध्यम से यह कार्य किया, जिससे उन्हें बड़ी प्रसिद्धि भी मिली। हम उनके उसी लेख के अनुरूप उनके द्वारा प्रस्तुत प्रत्ययवाद के खण्डन की विवेचना करेंगे।

(ii) इस खण्डन का मूल बिन्दु

मूर को यह अवगति है कि प्रत्ययवाद का दर्शन इतना विशद है कि उसका खण्डन सरल नहीं है, कम से कम एक लेख में तो यह प्रायः असंभव है। अतः मूर सर्वप्रथम अपने खंडन का क्षेत्र निश्चित करते हैं, और वह भी इस प्रकार कि उस मूल खंडन से प्रत्ययवाद की पूरी इमारत ही हिल जाय।

उनके अनुसार किसी भी प्रकार का आध्यात्मवाद अथवा प्रत्ययवाद दो बातों पर अवश्य जोर देता है, एक तो यह कि विश्व जैसा दिखाई देता है उससे बड़ा भिन्न है, तथा दूसरा यह कि विश्व के तत्त्वों में ऐसे अनेकों लक्षण हैं, जो सामान्यतः दिखाई नहीं देते। इसी कारण इस सिद्धान्त में जड़-पदार्थों में भी उन गुणों का आरोपण किया जाता है जिन्हें सामान्यतः उच्चतर जीवों में ही आरोपित किया जाता है। यही कारण है कि ये विचारक **'सत् को आध्यात्मिक'** कहते हैं। इस एक उक्ति के इतने संदर्भ हैं, इतने निहितार्थ हैं कि उनका एक साथ खंडन प्रायः असम्भव ही है। अतः मूर कहते हैं कि वे अपना ध्यान इस उक्ति या इसके निहितार्थों पर नहीं देते, बल्कि उन **तर्कों** अथवा **'युक्तियों'** पर देते हैं जिन पर ये आधृत हैं। प्रत्ययवाद की यह विशिष्टता रही है कि वे अपनी बातों के समर्थन में विशेष ढंग का तर्क प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणतः बहुत से धर्मों में भी सत् को आध्यात्मिक स्वीकारा जाता है, किन्तु उन्हें प्रत्ययवादी दर्शन का उदाहरण नहीं माना जाता। वह केवल इस कारण कि उन धर्मों में वैसे तर्क—या वैसी युक्तियाँ नहीं हैं जो प्रत्ययवाद के दर्शन में हैं। अतः मूर को प्रत्ययवाद की विशिष्टता उनके निष्कर्षों में नहीं, बल्कि उनके तर्कों में दिखाई देती है, अतः वे अपने खंडन का केन्द्र-बिन्दु उन्हीं तर्कों को बनाते हैं।

प्रत्ययवादी विचारकों के द्वारा प्रस्तुत सभी तर्कों का खण्डन भी मूर को दुरुह प्रतीत होता है। अतः वे अपने लक्ष्य-बिन्दु को और निश्चित एवं केन्द्रित करते हैं। उनका कहना है कि उनकी एक उक्ति ऐसी है जो किसी न किसी रूप में उनके हर तर्क की एक अनिवार्य कड़ी है। हर प्रत्ययवादी उसे स्वीकारता है, तथा अनिवार्यतः अपने तर्क में उसका उपयोग करता है। उदाहरणतः इस सिद्धान्त को मूलोक्ति—'सत् आध्यात्मिक है' की तात्विकता का सबसे स्पष्ट आधार क्या है? किस सरलतम तर्क के आधार पर इसे स्थापित किया जाता

Scanned with CamScanner

है वह तर्क कुछ इस प्रकार का है, जो कुछ है, उनका होना तो इसी पर निर्भर है कि उसका अनुभव हुआ। जिसका अनुभव नहीं होता, उसे 'होने' का प्रश्न ही अप्रासंगिक है क्योंकि वस्तु अनुभूति से अलग है या नहीं—यह जानने का कोई संदर्भ ही नहीं है। तो वस्तु के होने का अर्थ उसका अनुभूत होना है। वह अनुभूति से स्वतंत्र नहीं, अनुभूति का ही अंश है। अतः इस अर्थ में वह मानसिक है, तथा उसकी मानसिकता के आधार पर उसकी आध्यात्मिकता सिद्ध होती है। तो सरल तर्क की भी अनिवार्य कड़ी है—वस्तु के होने का अर्थ उसका देखा जाना है। इसी बात को बर्कले की भाषा में **'दृश्यते इति वर्त्तते'** (Esse-est-Percipi)—(वस्तु का होना उसके देखे जाने पर निर्भर है)—कहा गया है। मूर कहते हैं कि यह एक विचार प्रत्ययवादी तर्कों की अनिवार्य कड़ी है। अतः वे अपना ध्यान इसी पर केन्द्रित करते हैं।

इसमें, जैसा कि वे स्वयं स्वीकारते हैं, उन्हें एक विशेष लाभ है। एक 'चेन' की उपमा से उनकी इस बात को समझा जा सकता है। चेन मजबूत है या नहीं इसे जाँचने के लिए उसकी हर कड़ी का मजबूती को परखना आवश्यक नहीं। यदि कोई एक कड़ी कमजोर है, तो इससे पूरा चेन कमजोर सिद्ध हो जाता है। उसी प्रकार प्रत्ययवाद के समर्थक तर्कों को परखने के लिए उनके तर्क की हर कड़ी को परखना अनिवार्य नहीं है। उनके तर्कों की कड़ी में यदि कोई ऐसी कड़ी है—जो उनके 'चेन' की अनिवार्य कड़ी है, और यदि उस अनिवार्य कड़ी की कमजोरी—उसकी अयुक्तता सिद्ध हो जाती है, तो उनके तर्कों का पूण 'चेन' कमजोर सिद्ध होता है। मूर कहते हैं कि प्रत्ययवादी तर्कों की एक अनिवार्य कड़ी हैं 'दृश्यते इति वर्त्तते' (Esse est Percipi)। अब यदि यह अयुक्त सिद्ध हो जाय तो प्रत्ययवाद का पूर्ण तर्क निष्फल सिद्ध होता है। इसी उद्देश्य से प्रत्ययवाद के खण्डन में मूर प्रथमतः इसी वाक्य के खण्डन का प्रयत्न करते हैं।

(iii) दृश्यते इति वर्तते (Esse est Percipi) का खण्डन

मूर सर्वप्रथम 'Percipi' शब्द में जो व्यामिश्र है, उसे स्पष्ट करते हैं। प्रारम्भ में इसका अर्थ 'इन्द्रियों के माध्यम से जो देखा जाय' समझा जाता था। यदि यही दृश्यते का अर्थ होता तो मूर के लिए इस उक्ति का खंडन और सरल हो जाता। किन्तु, मूर इतना स्वीकारते हैं कि प्रत्ययवादी विचारकों ने 'Percipi' शब्द को इस प्रकार सीमित नहीं रखा है। वे इसके अन्तर्गत **विचार** (Thought) सभी प्रकार के अनुभव (Experience) को रखते हैं। अतः खण्डन करने में भी इस शब्द की व्यापकता को ध्यान में रखना पड़ेगा। दृश्यते (Percipi) से वह सब कुछ बोध होता है **'जो अनुभूत होता है'**।

किन्तु, दृश्यते शब्द को इस अर्थ में समझने पर भी इस उक्ति में जो संयोजक (Copula) है, उसी के व्यवहार में मूर व्यामिश्र दिखाई देता है। 'Esse is Percipi'—इस उक्ति में Copula 'is' (है) का व्यवहार तीन अर्थों में हो सकता है। (1) पहले अर्थ में कहा जा सकता है कि 'Is' (है) शब्द का अर्थ उद्देश्य तथा विधेय का पूर्ण तादात्म या एकरूपता है। इसका अर्थ है कि 'Esse' शब्द तथा 'Percipi' शब्द एक ही वस्तु के दो नाम हैं, दोनों सर्वथा एकरूप हैं। अर्थात्, इस अर्थ में यह वाक्य 'मनुष्य विवेकशील जीव है' जैसा वाक्य है। किसी वाक्य में भी जहाँ 'मनुष्य' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है वहाँ उसके लिए 'विवेकशील जीव' शब्द का भी प्रयोग किया जा सकता है। इस अर्थ में कहा जा सकता है कि 'Esse' शब्द का पूर्ण अर्थ 'Percipi' शब्द से सूचित हो रहा है।

Scanned with CamScanner

(2) संयोजक 'Is' (है) से एक दूसरा अर्थ भी सूचित हो सकता है। कहा जा सकता है कि 'Esse' 'Percipi' है—इसका अर्थ है कि 'Esse' शब्द के अर्थ का एक अंश 'Percipi' भी है। Esse शब्द के अर्थ को समझने के लिए 'Percipi' शब्द को समझना अनिवार्य (Necessary) है, भले ही वह 'Esse' शब्द को समझने के लिए यथेष्ट (Sufficient) न हो। इस अर्थ में 'Esse is Percipi' वाक्य 'मनुष्य जीव है' जैसा वाक्य हैं। 'मनुष्य' शब्द के अर्थ का अंश 'जीव' है। बिना जीव शब्द को समझे 'मनुष्य' शब्द के अर्थ को नहीं समझा जा सकता, यद्यपि केवल 'जीव' शब्द के अर्थ को जानकर मनुष्य शब्द को नहीं जाना जा सकता। (3) संयोजक 'Is' (है) का एक तीसरा अर्थ भी सम्भव है। कहा जा सकता है कि वाक्य 'Esse is Percipi' में 'Is' शब्द से 'Esse' तथा 'Percipi' शब्दों की पूर्ण अथवा आंशिक समानता नहीं बतायी जा रही, बल्कि इन दोनों का एक अनिवार्य सम्बन्ध बताया जा रहा है। इस दृष्टि से 'percipi Esse का न अर्थ है न उसके अर्थ का कोई अंश। यह एक अलग लक्षण है जो उसके साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा है। अर्थात्, इस दृष्टि से यह वाक्य हमारे आनुभविक वाक्यों जैसा वाक्य है, जैसे 'मनुष्य मरणशील है' मनुष्य की एक जन्म-तिथि होती है। 'मरणशीलता' अथवा जन्म तिथि होना मनुष्य शब्द का अर्थ नहीं है, उसके अर्थ का कोई अंश भी नहीं है, मनुष्य शब्द के साथ अनिवार्यतः जुटा है। यह एक आकस्मिक गुण है, किन्तु यह आकस्मिक गुण उसके साथ अवियोज्य है (Invariable accident)। ध्यान देने की बात यह है कि यदि पहले दो अर्थों पर ध्यान दें तो उन अर्थों में 'Esse is Percipi' वाक्य विश्लेषणात्मक (Analitic) हो जाता है, क्योंकि उन दोनों अर्थों में उद्देश्य शब्द 'Esse' के पूर्ण या आंशिक गुण को विधेय 'Percipi' सूचित कर रहा है। किन्तु, तीसरे अर्थ में 'Percipi' एक नवीन लक्षण हो जाता है अतः तीसरे अर्थ में 'Esse is Percipi' **संश्लेष्णात्मक वाक्य** (Synthetic) बन जाता है।

अब मूर यह देखते हैं कि इन तीनों में किस अर्थ में इस वाक्य 'Esse is Percipi' को स्वीकारा जो सकता है। वे दिखाते हैं कि इन तीनों में किसी अर्थ में हम इसे नहीं स्वीकार सकते।

यदि संयोजक 'is' के पहले अर्थ पर ध्यान दें तो उसका अर्थ हो जाता है कि 'Esse' शब्द तथा 'Percipi' शब्द एक दूसरे के पूर्णतः पर्यायवाची हैं, एक से ऐसा कुछ सूचित नहीं होता जो दूसरे से सूचित नहीं होता है। किन्तु, उस अवस्था में 'Esse' को 'Percipi' कहना 'Esse' की परिभाषा देना है। किन्तु, मूर कहते हैं कि कोई प्रत्ययवादी 'Esse is Percipi' को 'Esse' की परिभाषा नहीं कहता। मूर कहते हैं कि यदि यह Esse की परिभाषा होता तो बड़ा ही गलत होता। किन्तु, प्रत्ययवादी स्वयं ऐसा नहीं मानते, ऐसा मानते, तो इसे सिद्ध करने की चेष्टा नहीं करते। उस दशा में तो यह स्वतः सिद्ध होता। इससे स्पष्ट होता है कि प्रत्ययवादी विचारकों का अभिप्रेत अर्थ यह नहीं है।

तो, इसके **दूसरे** अर्थ पर विचार करें। इस अर्थ में 'Esse' तथा 'Percipi' में पूर्ण तादात्म्य नहीं माना जाता, बल्कि आंशिक एकरूपता माना जाता है। इस अर्थ को, ध्यान पर रखने पर कहा जाता है कि 'Esse' 'Percipi' तो है, किन्तु मात्र 'Percipi' नहीं है। इसके अनुसार 'Esse' 'Percipi) के अतिरिक्त **कुछ और** है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि यदि कोई वस्तु है (Esse) तो उस आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि वह अनुभूत हुआ है। किन्तु, कोई वस्तु अनुभूत होता है, तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वह है, क्योंकि

Scanned with CamScanner

(इस अर्थ में) 'होने' के लिए अनुभूत होने के अतिरिक्त कुछ और लक्षण का रहना अनिवार्य है। अब मूर कहते हैं कि यदि 'Esse is Percipi' का यही अर्थ हो, तो प्रत्ययवादी निष्कर्ष तो आपसे आप खण्डित हो जाता है, क्योंकि यहाँ तो यह स्वीकारा ही जा रहा है कि किसी वस्तु का 'देखा जाना' उसका 'होना' नहीं है, क्योंकि उसके 'होने' के लिए उसके 'देखे जाने' के अतिरिक्त कुछ और होना अनिवार्य है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि इस अर्थ में भी प्रत्ययवादी 'Esse est Percipi' का समर्थन नहीं कर सकते।

अतः मूर कहते हैं कि अब संयोजक 'Is' का केवल उपर्युक्त तीसरा अर्थ बच जाता है जिस अर्थ में प्रत्ययवादी 'Esse is Percipi' को बचाने की चेष्टा कर सकते हैं। अब मूर इसकी परीक्षा करते हैं। उनका कहना है कि इस अर्थ के अनुरूप, 'Percipi न तो 'Esse' का अर्थ है, न उसके अर्थ का कोई अंश। अर्थात् Percipi' कोई नया लक्षण है। फलतः 'Esse est Percipi' एक संश्लेषणात्मक (Synthetic) वाक्य हुआ। संश्लेष्णात्मक वाक्यों में तो अनिवार्यता नहीं होती, तो इस वाक्य को अनिवार्य(Necessary)कैसे कहा जा सकता है? उसका एक ही ढंग है। यदि दोनों की अवियोज्यता (Invariability) हो, तो उस दृष्टि से इसमें अनिवार्यता मानी जा सकती है। इतना तो स्पष्ट हो गया कि 'Percipi' 'Esse' का अर्थ नहीं है। मान लें 'Esse' का अर्थ है कोई 'x' अब यदि यह दिखाया जा सके कि इस 'x' तथा 'Percipi' में ऐसा अवियोज्य सम्बन्ध है कि बिना 'Percipi' के 'x' नहीं रह सकता, तो उसमें एक अनिवार्य सम्बन्ध बन आता है। वह उस प्रकार की अनिवार्यता होगी, जैसी धूम्र तथा अग्नि के बीच में हैं। धूम्र का अर्थ अग्नि नहीं है, किन्तु धूम्र बिना अग्नि के नहीं होता।

तो क्या (Esse) तथा (Percipi) के बीच इस प्रकार के अनिवार्य सम्बन्ध को स्वीकारा जा सकता है? मूर कहते हैं कि इस विशेष अर्थ में भी प्रत्यवाद (Esse is Percipi) को बचा नहीं सकता। इस अर्थ में विश्लेषणात्मक (Synthetic) वाक्य में अनिवार्यता बतायी जा रही है। किन्तु, विश्लेषणात्मक वाक्य अनिवार्य तभी हो सकता है, जब वह स्वतः सिद्ध हो। सामान्यतः स्वतः सिद्ध वाक्यों के लिए कोई युक्ति उपस्थित नहीं की जाती, किन्तु प्रत्ययवादी इसके लिए जो सामान्य उक्ति देते हैं, वह कुछ इस प्रकार की है। वे कहते हैं कि ''किसी वस्तु का होना उसके देखे जाने पर निर्भर है, क्योंकि किसी अनुभव विषय की हम विषयी या अनुभवकर्ता से अलग कल्पना भी नहीं रह सकते।'' इसका अर्थ हुआ कि इस वाक्य में अनिवार्यता देने का आधार यह है कि इसके विरोधात्मक वाक्य की हम कल्पना नहीं कर सकते। किन्तु, जिस वाक्य के विरोधी वाक्य की कल्पना नहीं की जा सकती, उसे तो विश्लेषणात्मक (Analytic) माना जाता है। तो इसका यह अर्थ हुआ कि इस दृष्टि से (Esse is Percipi) एक साथ **संश्लेषणात्मक** एवं विश्लेषणात्मक दोनों है। अर्थात् यह पूरी युक्ति आत्मविरोधी बन जाती है, इस दृष्टि से इस तीसरे अर्थ में भी 'Esse is Percipi' को मान्यता नहीं मिल सकती, क्योंकि इस अर्थ में तो यह एक विरोधाभास (Self contradiction) में उलझ जाता है।

(iv) उपर्युक्त विवेचन से निकले कुछ अन्य बिन्दु

अब मूर यह देखने की चेष्टा करते हैं कि इस प्रकार के उलझन में प्रत्ययवादी कैसे उलझ जाते हैं, इस असंगति के पीछे कौन से विचार ऐसे प्रमुख हैं जो उन उलझनों को जन्म देते है। **प्रथमतः** तो उनका कहना है कि यहाँ प्रत्ययवादी तर्क कुछ इस ढंग से अग्रसर

Scanned with CamScanner

होता है। वे पहले(Esse is Percipi)की अनिवार्यता व्याघात-नियम(Law of Contradiction) के आधार पर सिद्ध करते हैं। इसके व्याघात के विषय में नहीं सोचा जा सकता है, अतः उसमें अनिवार्यता है। अब इस अनिवार्यता के आधार पर वे (Percipi) तथा (Esse) में तादात्म स्थापित कर देते हैं, वे अनुभव में विषयी तथा विषय के भेद को समाप्त कर देते हैं। वे (Percipi) तथा (Esse) को एक कर देते हैं, क्योंकि अब उनके अनुसार विषयी (Subject) तथा विषय (Object) एक हो गये।

मूर कहते हैं कि प्रत्ययवादी ऐसा इसी कारण करते हैं कि वे इनके अन्तर को देख नहीं पाते, उसकी उपेक्षा कर देते हैं। उनके अनुसार अब अनुभव-विषय 'पीला' तथा 'पीले का अनुभव'—'पीले की संवेदना'(Yellow तथा Sensation of yellow)का अन्तर समाप्त हो जाता है। प्रत्ययवादी को ऐसा लगता है कि 'पीले की संवेदना' में ऐसा कुछ नहीं है जो 'पीला' में नहीं है। इसी आधार पर वे विषयी तथा विषय के अन्तर की उपेक्षा कर देते हैं।

किन्तू मूर कहते हैं कि यदि वस्तुतः दोनों एकरूप होते, तो उनकी एकरूपता को दिखाने की कोई आवश्यकता ही नहीं होती। वैसा दिखाने की चेष्टा तो 'पीले' को 'पीला' दिखाने की चेष्टा जैसी निरर्थक चेष्टा होती। इस स्थल पर मूर हेगेल के विचारों के अनुरूप एक उत्तर की अपेक्षा करते हैं। उनका कहना है कि प्रत्ययवादी कह सकते हैं कि विषय-विषयी-सम्बन्ध एक आंगिक इकाई (Organic unity) है। किन्तु मूर कहते हैं कि यह तो **एक तर्काभाव को एक विशिष्ट नाम देकर विशेष रूप में प्रतिष्ठित करने की चेष्टामात्र है।** फिर भी देखा जा सकता है कि इस दृष्टि में प्रत्ययवादी शायद यह दिखाना चाहता है कि 'Esse' एवं 'Percipi' के बीच अथवा 'विषयी' 'विषय' के बीच एकरूपता 'भेदों में तादात्म्य' (Identity- in- diffrence)जैसी है। किन्तु, पुनः मूर का यही कहना होगा कि यह तो निरर्थक बात है—इसमें आत्म-विरोध है। यदि क ख भिन्न हैं, तो भिन्न हैं; एकरूप हैं, तो एकरूप हैं। यह कहना कि दोनों में भिन्नता रहते हुए भी एकरूपता है—तो तर्काभाष है।

इस प्रकार के कथन का समर्थन एक ही ढंग से किया जा सकता है। कहा जा सकता है कि 'क' तथा 'ख' एक दृष्टि से एक है, तथा दूसरी दृष्टि से भिन्न है। उदाहरणतः 'लाल' एवं 'पीला' को इस दृष्टि से एक कहा जा सकता है कि वे दोनों 'रंग' है। किन्तु दोनों एक दूसरे से भिन्न भी हैं, क्योंकि रंग का एक प्रकार लाल है तो भिन्न ढंग का प्रकार पीला है। प्रश्न है कि क्या 'Esse' तथा 'Percipi' अथवा 'विषयी' विषय में 'भेदों में तादात्म्य' (Identity-in diffrence) इसी ढंग का है। यदि प्रत्ययवादी ऐसा मानें तो पुनः तर्कदोष से उलझ जायेंगे, क्योंकि इसके आधार पर वे **स्पष्टतः** यह तो नहीं ही कह सकते कि **दोनों** 'एकरूप' तथा 'भिन्न' एक ही अर्थ में है। उपर्युक्त रंग के उदाहरण से इसे समझें।

(क) 'पीला' एवं 'लाल' रंग होने के नाते एक हैं।

(ख) दोनों अलग-अलग ढंग के रंग होने के कारण भिन्न हैं।

अब यह स्पष्ट हो जाता है कि जैसे ही हम दो अर्थों या दो 'दृष्टियों' की बात करते हैं, हमें दो, एक दूसरे से भिन्न, वाक्य मिल जाते हैं। इन दोनों वाक्यों के उद्देश्य भी भिन्न हो जाते हैं। इसका मतलब यह होता है कि भिन्नता तथा एकरूपता का आरोपण एक ही उद्देश्य पर हो ही नहीं सकता। जब एकरूपता दिखाई जाती है, तो जो उद्देश्य उजागर होता है वह तथा भिन्नता दिखानेवाला उद्देश्य एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। निष्कर्षतः कहा जा

Scanned with CamScanner

सकता है कि 'भेदों में तादात्म' (Identity in difference) के बल पर भी प्रत्ययवादी अपने विचार की रक्षा नहीं कर सकते।

(v) कुछ और आपत्तियाँ

Esse is Percipi के समर्थन में प्रत्ययवाद के द्वारा प्रस्तुत तर्कों के स्वरूप को समझने के लिए मूर को यह अनिवार्य प्रतीत होता है कि वे 'संवेदना' (Sensation) या भाव-प्रत्यय (Idea) के स्वरूप की विवेचना करें। मूर को ऐसा प्रतीत होता है कि इन्हीं के भाव-विचार को निरूपित करने में प्रत्ययवादी विचारक कुछ भ्रांतियों में उलझ जाते हैं।

इतना तो स्पष्ट ही है कि (उदाहरणतः) 'हरे' की संवेदना तथा 'नीले' की संवेदना में कुछ तो अन्तर है ही। किन्तु, उन दोनों में कुछ सादृश्यता भी अवश्य है क्योंकि दोनों संवेदनायें हैं। प्रश्न यह है कि वह सादृश्यता क्या है, तथा इस सादृश्यता में तथा उन दोनों संवेदनाओं की भिन्नता में क्या संबंध है? सादृश्यता को तो मूर 'चेतना' (Consciousness) कहते हैं क्योंकि दोनों संवेदनायें (हरे एवं नीले की) एक जैसे इसी तथ्य में हैं कि दोनों में कुछ चेतना होती है। अब हर संवेदना में दो तत्त्व स्पष्ट हो गये—एक तो चेतना जो हर संवेदना में है, तथा दूसरा वह तत्त्व जिसके चलते एक संवेदना दूसरी संवेदना से भिन्न है। इस दूसरे तत्त्व को मूर **'संवेदना का विषय'** (Object of Sensation) कहते हैं। अतः मूर के अनुसार यह स्वीकार करना पड़ता है कि हर संवेदना में दो तत्त्व रहते ही हैं—एक **चेतना** तथा दूसरा **चेतना का विषय** (संवेदना का विषय)। ऐसा इसलिए अनिवार्य हो जाता है कि 'हरे' तथा 'नीले' की संवेदना जैसी दो संवेदनायें एक दृष्टि से एक जैसी हैं, तो दूसरी दृष्टि से भिन्न। वे एक जैसी हैं क्योंकि दोनों चेतना हैं। वे भिन्न हैं क्योंकि इस चेतना में जो प्राप्त होता है—जो चेतना का विषय है (हरा एवं नीला) वे एक दूसरे से भिन्न हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हम चेतना तथा **चेतना के विषय** को एकरूप मान सकते हैं—क्या हम दोनों को एक कह सकते हैं? प्रत्ययवादी ऐसा ही कहते हैं? किन्तु, मूर इसका विश्लेषण करते हुए यह पूछते हैं कि जब 'हरे' की संवेदना होती है तो क्या होता है? उसमें 'चेतना' रहती है, या 'हरा' रहता है या 'दोनों' रहते हैं? मूर कहते हैं कि इसमें चेतना तो अवश्य रहती है, क्योंकि हरा-नीला आदि सभी संवेदनाओं में चेतना तो रहती ही है। तो यदि चेतना रहती है, तब दो ही विकल्प उपस्थित होते हैं—या तो केवल चेतना है, या चेतना एवं विषय दोनों हैं। इसका स्पष्ट परिणाम यह होता है कि यदि कोई कहे कि 'चेतना' एवं 'विषय' वस्तुतः एक हैं, तो यह भ्रांति होगी। चेतना तो है ही, तथा उसका कोई विषय भी है, अतः **चेतना** तथा **विषय** एक नहीं हैं मूर कहते हैं कि प्रत्ययवादी विचारकों ने यही भूल तो किया है—वे **चेतना तथा चेतना के विषय** ('हरे' की संवेदना तथा 'हरा') को एक मान लिया है। यहाँ अंश को 'सम्पूर्णता' से एकरूप करने का दोष हो जाता है। मूर कहते हैं कि उनके विश्लेषण से यह प्रायः स्पष्ट हो गया है कि 'चेतना' तथा 'विषय' एक नहीं हैं, भिन्न हैं। मूर तो यहाँ तक कहते हैं कि चेतना तथा विषय यदि पूर्णतया एक होते तो, किन्हीं दो संवेदनाओं में भेद करने का आधार ही नहीं रह जाता।

इस बात को मूर की ओर से और स्पष्ट किया जा सकता है। उदाहरणतः 'हरे' की चेतना तथा 'नीले' की चेतना में, जैसा कि ऊपर बताया गया है, जो एक है वह है चेतना। अब यदि चेतना तथा विषय एक ही होता तो 'हरे की चेतना' तथा 'नीले की चेतना' में अन्तर ही नहीं होता। दोनों में समानता चेतना की है, चेतना तथा चेतना के विषय में कोई

Scanned with CamScanner

भिन्नता नहीं, तो 'हरे की चेतना' तथा 'नीले की चेतना' भी एक ही होती। किन्तु, ऐसा नहीं है। मूर कहते हैं कि प्रत्ययवादी यह सर्वथा भूल जाते हैं कि इन दोनों चेतनाओं की भिन्नता का आधार दोनों **'विषयों की भिन्नता'** है। अतः उनकी चेतना एवं विषय को एकरूप करने की चेष्टा युक्तिसंगत नहीं।

इस स्थल पर मूर को प्रत्ययवादी विचारकों की ओर से एक सम्भावित उत्तर की अपेक्षा है। प्रत्ययवादी कह सकते हैं कि यदि चेतना तथा विषय में पूर्ण तादात्म स्थापित नहीं भी किया जा सकता, यह तो कहा ही जा सकता है कि दोनों अभिन्न हैं क्योंकि विषय चेतना का अंश है—चेतना की ही अन्तर्वस्तु (Content) है। मूर का कहना है कि प्रत्ययवाद की ओर से दिया गया यह तर्क भी युक्तिसंगत सिद्ध नहीं हो सकता। उनके कहने का तात्पर्य है कि 'हरे' की चेतना का एक अंश 'हरा' है, हरा उस चेतना में है। मूर कहते हैं कि हरा 'हरी वस्तु' का अंश हो सकता है, हरे की चेतना का अंश नहीं हैं। यह तो मात्र इसी से सिद्ध हो जाता है कि हम हरी वस्तु को 'हरा' कह सकते हैं, चेतना को हरी चेतना नहीं कह सकते। अन्तर्वस्तु (Content) का अर्थ ही होता है—जिसका वह अन्तर्वस्तु है, उसी में वह है। किन्तु चेतना में जो विषय ज्ञात होते हैं, वे चेतना के अंग नहीं हैं। जब हमें मेज की चेतना होती है, तो मेज हमारे मन में प्रवेश किया हुआ नहीं होता। यदि हम यह पहले से माने रहें कि चेतना का विषय चेतना का अंश है, तो यह तो पुनरुक्ति दोष होगा—तर्क नहीं।

किन्तु, यदि कहा जाय कि जब विषय को चेतना की अन्तर्वस्तु कहा जाता है, तो उसका यह तात्पर्य नहीं कि वह विषय अपने वस्तु-रूप में चेतना का अंश है, बल्कि उसका तात्पर्य यह है कि वस्तु की कोई प्रतिमा (Image) चेतना का अंश है। उदहारणतः कहा जा सकता है कि जब 'हरे' की चेतना होती है तो चेतना 'हरी' नहीं हो जाती, बल्कि हरे की एक प्रतिमा (Image) चेतना का अंश बन जाती है। मेज के संवेदनात्मक ज्ञान में मेज की प्रतिमा मन का अंश है। इसी अर्थ में चेतना तथा विषय अभिन्न हैं। किन्तु मूर कहते हैं कि प्रत्ययवाद को बचाने की यह चेष्टा भी निरर्थक है। उनका कहना है कि यह तभी युक्तिसंगत होगा जब 'प्रतिमा का होना' तथा 'विषय का होना' सर्वथा एक होते। किन्तु वास्तविकता ऐसी नहीं है। बहुत से ऐसे उदारहण दिये जा सकते हैं जहाँ प्रतिमा तो हैं, विषय नहीं है। उदाहरणतः हमें 'पंखवाले घोड़े' 'स्वर्णिम पहाड़' आदि की प्रतिमाएँ हो सकती हैं, किन्तु वे किसी चेतना के विषय नहीं। पुनः मूर कहते हैं कि हमें जब विषय की चेतना होती है, तो स्पष्ट अनुभूति होती है कि वह विषय हमसे बाहर है, वह हमारे मन की प्रतिमा मात्र नहीं। हमें 'सर्प' की चेतना हो, तो हम 'सर्प' को मात्र प्रतिमा नहीं मानते, बल्कि अपने से बाहर एक विषय-वस्तु मानते हैं। अतः प्रतिमा के आधार पर भी प्रत्ययवादी चेतना तथा विषय को एक नहीं कर सकते।

अन्त में मूर कहते हैं कि प्रत्ययवादी जिस ढंग का विचार प्रस्तुत करते हैं, वह तो एक दृष्टि से उनके प्रत्ययवाद का ही विरोधी है। यदि हर तत्व का होना उसके अनुभूत होने पर—उसके देखे जाने पर निर्भर है, तो **'आत्म'** (Self) के अस्तित्व को भी नहीं स्वीकारा जा सकता। उसी तर्क के आधार पर प्रत्ययवादी विचारकों से पूछा जा सकता है कि वे 'आत्म' को किस आधार पर स्वीकारते हैं। 'आत्म' का होना भी तो उसके अनुभूत होने पर निर्भर करेगा। तो आत्म का स्वतंत्र अस्तित्व भी खण्डित हो जाता है। इसी कारण

Scanned with CamScanner

मूर कहते हैं कि जिस आधार पर—जिस प्रकार की युक्तियों पर प्रत्ययवादी आत्म के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकारते हैं, उसी प्रकार की युक्तियों के आधार पर विषय की स्वतंत्रता को स्वीकारना भी अनिवार्य हैं।

अभी हमने मूर के द्वारा किया गया 'प्रत्ययवाद का खण्डन' का एक संक्षिप्त विवरण दिया। यह विवरण पूर्णतः उनके इसी नाम के लेख पर आधृत है। वैसे विभिन्न स्थलों में प्रसंगानुसार मूर ने प्रत्ययवाद के खंडन के कुछ अन्य बिन्दुओं को और स्पष्ट किया है, किन्तु उन सबों को एकत्रित करने से यह उपखण्ड बहुत ही विस्तृत हो जायगा, जो इस पुस्तक में संभव नहीं है।

Scanned with CamScanner

मूर का संबंध के स्वरूप पर विचार, एक संक्षिप्त रूपरेखा
(A Brief Summary of Moore's Views on the Nature of Relation)

मूर की मान्यताएँ वास्तववादी हैं तथा प्रत्ययवादी दृष्टि के सर्वथा विरुद्ध है। वास्तववादी तथा प्रत्ययवादी दृष्टियों के विरोध का एक केन्द्रीय बिन्दु है, 'संबंध का स्वरूप' (Nature of Relation)। प्रत्ययवादी अनिवार्यतः संबंधों को आन्तरिक मानते हैं। उनके अनुसार 'संबंध' के द्वारा जो संबंधित हैं उनकी संरचना तथा उनका स्वरूप निर्धारित होता है। वास्तववादी प्रायः संबंधों को बाह्य मानते हैं। मूर के समय संबंधों के आन्तरिक होने का सिद्धान्त बड़ा प्रमुख सिद्धान्त माना जाता था, क्योंकि प्रत्ययवादी विचारकों के द्वारा इसे प्रमुखता मिली

Scanned with CamScanner

थी। मूर जिनका स्वाभाविक झुकाव इस मत के विरुद्ध है—इसकी परीक्षा-समीक्षा करते हैं तथा उस आधार पर संबंधों के स्वरूप पर अपने मत को व्यक्त करते हैं। उनके मत का पूर्ण विवेचन तो यहाँ सम्भव नहीं है। वह केवल स्थानाभाव के कारण नहीं, बल्कि इस कारण भी कि यह विवेचना कुछ तर्कशास्त्रीय विवेचनाओं में अनिवार्यतः उलझ जाती है, और यहाँ उन प्रश्नों में प्रवेश करना अभीष्ट नहीं है। अतः यहाँ हम उनके विचारों की एक बहुत संक्षिप्त रूपरेखा ही प्रस्तुत करेंगें। वह भी मूर के ढंग के अनुरूप इस समीक्षा पर आधृत रहेगा कि प्रत्ययवादी जब संबंधों को आन्तरिक बनाते हैं, तो इससे उनका क्या तात्पर्य हो सकता है। मूर के समक्ष कठिनाई यह है कि संबंधों की आन्तरिकता पर जब ब्रैडले जैसे प्रत्ययवादी दार्शनिक विभिन्न उक्ति देते हैं, तो मूर को उन उक्तियों को समझने में—उनके अर्थ-निरूपण में—कठिनाई होती है। अपने विश्लेषण के ढंग के अनुरूप वे विभिन्न संभावित अर्थों की कल्पना करते हुए संबंधों के स्वरूप को समझने की चेष्टा करते हैं।

इस विषय पर अपने मूल लेख बाह्य एवं आन्तरिक संबंध (External and Internal Relations) में मूर ब्रैडले तथा अन्य वैसे ही विचारकों के आन्तरिक संबंध पर दिये गये कुछ कथनों का उल्लेख करते हैं तथा कहते हैं कि उन कथनों के अर्थ को समझना सरल नहीं है। संबंधों को आंतरिक कहने में प्रत्ययवादी विचारकों का क्या तात्पर्य है—इसे समझने के लिए मूर अपना एक ढंग अपनाते हैं। वे एक ऐसी प्रतिज्ञप्ति की बात करते हैं जिन्हें प्रत्ययवादी किसी-न-किसी रूप में स्वीकारते हैं। उस प्रतिज्ञप्ति में उनके कथनों का पूर्ण तात्पर्य निहित नहीं है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनके सभी कथनों में वह प्रतिज्ञप्ति आपादित (implied) है। उनका उद्देश्य यह दिखलाना है कि संबंधों के आंतरिक होने का यदि वही अर्थ है जो उस प्रतिज्ञप्ति से सूचित होता है, तो उस अर्थ में भले ही कुछ संबंध आंतरिक प्रतीत हों, कुछ संबंध स्पष्ट रूप में बाह्य ही होंगे।

वह प्रतिज्ञप्ति क्या है? 'संबंध आंतरिक है' से प्रत्ययवादी विचारकों का क्या विशिष्ट तात्पर्य है? पहले मूर तो यह दिखलाते हैं कि इस वाक्य 'संबंध आंतरिक है' के कुछ ऐसे स्पष्ट अर्थ हैं जिसे स्वीकारा जा सकता है, किन्तु जो अर्थ प्रत्ययवादी विचारकों के ही अभिप्रेत अर्थ प्रतीत नहीं होते।

प्रथमतः तो 'संबंध आंतरिक है'—इस वाक्य का एक ऐसा अर्थ हो सकता है जो स्पष्टतः तथा निश्चित रूप में सभी संबंधों के लिए सत्य है। इस वाक्य से समझा जा सकता है कि जहाँ संबंध दिखाया जाता है वहाँ मात्र यह नहीं दिखाया जाता कि कुछ पद हैं तथा उनमें कुछ संबंध है। उदाहरणतः हम कहते हैं कि क ख से संबंधित है, तो यहाँ केवल यह नहीं कहा जा रहा है कि क और ख है तथा उनके बीच एक संबंध है। यदि संबंध आंतरिक होने का मात्र यही अर्थ होता तो क, ख तथा उस संबंध को बता देने पर उस संबंधसूचक तथ्य का पूर्ण विश्लेषण हो जाता है। किन्तु, 'क ख संबंधित है' का यह विश्लेषण नहीं है। इसे एक अन्य उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है। हम कहते हैं, 'क ख का पिता है। यदि इस वाक्य का ऊपर दिया गया विश्लेषण किया जाय, तो तीन तत्त्व मिलेंगे—क, ख तथा पिता का संबंध। किन्तु, यह उसका विश्लेषण नहीं, क्योंकि यही तीनों एक अन्य—सर्वथा भिन्न वाक्य के भी विश्लेषण होंगे—'ख क का पिता है।' यहाँ भी विश्लेषण से ख, क तथा पिता संबंध—यही तीन तत्त्व मिलते हैं, लेकिन वाक्य पहले वाक्य से सर्वथा भिन्न है। इससे यह स्पष्ट होता है कि संबंध-सूचक तथ्यों का इस प्रकार का विश्लेषण संभव

Scanned with CamScanner

नहीं है। यदि संबंध आंतरिक होने का यही अर्थ होता, तो मूर को इसे स्वीकारने में कोई आपत्ति नहीं होती—क्योंकि मूर को यह स्वीकारने में कोई हिचक नहीं कि यह बात तो हर संबंध के लिए सत्य है। वस्तुतः इस वाक्य का अंतिम अर्थ यही हो जाता है कि संबंधित पद असंबंधित पदों से भिन्न हैं और यह तो एक स्वतः सिद्ध वाक्य है। किन्तु, मूर को यह अवगति है कि यद्यपि 'संबंध आंतरिक है' का यह सर्वमान्य अर्थ हो सकता है, प्रत्ययवादी इस वाक्य में मात्र इतना ही नहीं देखते, वे इस वाक्य में कुछ और देखते हैं।

वह कुछ और क्या है? मूर के अनुसार वह और शायद एक दूसरी प्रत्ययवादी कथन पर आधृत हो। प्रत्ययवादी संबंधों को आन्तरिक कहने में कभी-कभी यह भी कहते हैं कि संबंध जो संबंधित हैं उन्हें परिवर्तित करते हैं (relations modify the terms) । तो क्या संबंधों को आंतरिक कहने में प्रत्ययवादी इसी अर्थ का अभिप्राय रखते हैं? क्या उनका तात्पर्य यही है कि संबंध पदों को परिवर्तित करते हैं? मूर कहते हैं कि 'परिवर्तित करने' का जो प्रचलित शाब्दिक अर्थ है, उस अर्थ में तो प्रत्ययवादी—यहाँ इसका प्रयोग नहीं ही कर रहे हैं, क्योंकि उस अर्थ में प्रयोग करने पर यह असत्य हो जायगा। 'परिवर्तित करने' (modify) का जो सबसे प्रचलित अर्थ है 'वास्तविक परिवर्तन उत्पन्न करना' उदाहरणतः आग में रखने पर लाह गल जाता है, ताप से जल बाष्प बन जाता है आदि। इसमें संबंध वास्तविक परिवर्तन कर देता है, वस्तुतः स्वरूप बदल देता है। मूर का कहना है कि आंतरिक संबंध का यदि यह अर्थ है कि सम्बन्ध से स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है, तो यह स्पष्टतः असत्य हैं, क्योंकि अनेकों उदाहरण ऐसे हैं जिनमें संबंध में स्वरूप परिवर्तन नहीं होता। अतः मूर स्पष्टतः कहते हैं कि जब प्रत्ययवादी संबंधों को आंतरिक कहते हैं, तो उनका यह तात्पर्य हो ही नहीं सकता, क्योंकि उस अर्थ में तो उनकी उक्ति असत्य हो जायगी।

अतः मूर का कहना है कि जब प्रत्ययवादी कहते हैं कि 'संबंध पदों को परिवर्तित करते हैं', तो 'परिवर्तित करने' का प्रयोग वे इसके शाब्दिक अर्थ में नहीं, इसके किसी अलंकारिक अर्थ (metaphorical sense)में कर रहे हैं। वह आलंकारिक अर्थ क्या है? 'परिवर्तित करने' का सांकेतिक तात्पर्य 'भिन्न बनाना' (making different) भी हो सकता है। संबंधों को आंतरिक कहने में यह अर्थ भी निकल सकता है कि पद संबंध में आने के बाद भिन्न हो जाते हैं, अर्थात् संबंध में आने के पहले का पद तथा संबंध में आने के बाद के पद सर्वथा एकरूप नहीं रहते, एक दूसरे से भिन्न हो जाते हैं। उदाहरणतः वाक्य 'क ख का पिता है' में संबंध पिता-संबंध है। क 'पिता बनने के पहले, तथा पिता बनने के बाद सर्वथा एकरूप नहीं। पिता बनने के बाद-इस संबंध के फलस्वरूप-जो वह पहले था उससे वह भिन्न हो जाता है।

तो क्या संबंधों को आंतरिक कहने का यही तात्पर्य है? मूर कहते हैं कि इसमें एक व्यामिश्र है जिसे स्पष्ट कर लेना अनिवार्य है। इस स्थल पर 'संबंध' (Relation) तथा 'संबंधसूचक गुण या लक्षण'(Relational Property)के भेद को स्पष्ट कर लेना आवश्यक है। उनका कहना है कि ऊपर बतायी भिन्नता वस्तुतः संबंध के कारण नहीं होती, संबंध-सूचक लक्षणों के कारण होती है। यह ठीक है कि ये लक्षण संबंधों में ही सूचित होते हैं, किन्तु पदों में जो भिन्नता उत्पन्न होती है वह उन लक्षणों के कारण है। 'क ख का पिता है'—यहाँ 'पिता होना' एक संबंध है जो किसी काल में घटित होता है। लेकिन, इसमें एक संबंधसूचक गुण या लक्षण भी 'क' के साथ जुट जाता है। सम्बन्ध तो स्थापित होता है किसी विशेष काल में, किन्तु यह लक्षण तो 'क' के साथ ऐसा जुटता है कि 'क' की पहचान

Scanned with CamScanner

के अनेकों ढंगों में यह भी एक हो जाता है। 'क' के पिता बनने के पहले की स्थिति तथा पिता बनने के बाद की स्थिति की भिन्नता इसी बात पर है कि बाद में क में यह लक्षण जुट गया जो पहले उसमें नहीं था। अतः मूर के विचार में **संबंधसूचक लक्षण** यह भिन्नता उत्पन्न करते हैं, संबंध नहीं। इसे वे एक उदाहरण से स्पष्ट करते हैं। 'क ख का पिता है' 'क ग का भी पिता है'। **'क' का 'ख' तथा 'ग' के साथ एक ही संबंध है—पिता संबंध, किन्तु इन दोनों में भिन्नता संबंधसूचक लक्षण का है।** पहले में 'क' में जो लक्षण जुटता है, वह है 'ख के पिता होने' का लक्षण, तथा दूसरे में जो लक्षण जुटता है वह है 'ग के पिता होने का लक्षण', तथा ये दोनों लक्षण एक दूसरे से भिन्न हैं।

अब मूर को वह वाक्य मिल जाता है जिनकी उन्हें खोज थी। उन्हें वह वाक्य मिल जाता है जो उनके अनुसार संबंधों को आंतरिक कहने वाले सभी कथनों में एक प्रकार से आपादित है। उनके अनुसार यह वाक्य जिसे संबंधों की आंतरिकता पर दिये गये सभी कथन स्वीकारने से लगते हैं, यही है कि यदि किसी पद में **संबंधसूचक लक्षण** 'य' है, तो वह उन सभी ऐसे पदों से अनिवार्यतः भिन्न है जिसमें 'य' का **संबंध-सूचक लक्षण** नहीं है। इसका अर्थ है कि संबंध-सूचक लक्षण पदों में भिन्नता उत्पन्न करते हैं, वह भी इस प्रकार कि जिसमें एक ऐसा लक्षण है वह अन्य सभी पद जिसमें वह लक्षण नहीं है उससे भिन्न है। अर्थात् यदि हम कहें कि 'क में संबंधसूचक लक्षण 'य' है' तथा 'ख में 'य' नहीं हैं, तो इससे यह आपादित है कि 'क ख से भिन्न है'। मूर इस अर्थ को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'क' का 'य' को नहीं धारण करने का लक्षण', और 'क' का 'ख' से भिन्न होने का लक्षण एक दूसरे से इस प्रकार संबंधित हैं जिस प्रकार वाक्य 'यह लाल है' वाक्य 'यह रंग है' से संबंधित है, अथवा वाक्य 'यह समकोण त्रिभुज है' वाक्य 'यह त्रिभुज है' से संबंधित है। मूर के अनुसार इस विशेष अर्थ में संबंध पदों को भिन्न बनाते हैं। जब संबंधों को आंतरिक कहा जाता है तो मूर के अनुसार यह **स्वीकार होता है कि ऊपर दिये अर्थ में संबंध-सूचक लक्षण पदों को भिन्न बनाते हैं।**

अब मूर इस वाक्य की समीक्षा करते हैं। उन्हें इस वाक्य में एक और स्पष्टीकरण की आवश्यकता प्रतीत होती है। 'भिन्न बनाने' (Making different) का क्या अर्थ हो सकता है? भिन्नता बनाने के दो अर्थ हो सकते हैं, **'गुणात्मक भिन्नता'** (Qualitative difference) तथा **संख्यात्मक भिन्नता** (Numerical difference)। जहाँ गुणात्मक भिन्नता होती है, वहाँ स्वरूप में भिन्नता हो जाती है, संख्यात्मक भिन्नता में ऐसा नहीं होता। उदाहरणतः एक रुपये के दो ऐसे सिक्कों को लें जिनमें वर्ष, चमक, आकार सब सर्वथा एक जैसा है। उन सिक्कों में गुणात्मक भिन्नता नहीं है, केवल संख्यात्मक भिन्नता है। तो प्रश्न है कि संबंध-सूचक लक्षण पदों में किस प्रकार की भिन्नता उत्पन्न करते हैं, संख्यात्मक अथवा गुणात्मक? मूर का कहना है कि प्रत्ययवाद जब संबंधों को आन्तरिक मानते हैं तो उनका तात्पर्य स्पष्टतः गुणात्मक भिन्नता से ही है, मात्र संख्यात्म भिन्नता से नहीं। वस्तुतः गुणातमक भिन्नता अधिक केन्द्रीय है। यदि दो वस्तु गुणात्मक दृष्टि से भिन्न हैं, तो वे संख्यात्मक दृष्टि से भी भिन्न है, किन्तु इसका विपरीत सत्य नहीं। यदि दो वस्तु संख्यात्मक दृष्टि से भिन्न हैं, तो उससे यह नहीं निकलता कि वे गुणात्मक दृष्टि से भी भिन्न हैं। अतः अब मूर के अनुसार संबंधों को आंतरिक कहने का अर्थ हो जाता है कि संबंध-सूचक लक्षण (Relational Property) पदों को गुणात्मक दृष्टि से भिन्न बना देते हैं। (make them Qualitatively different)।

Scanned with CamScanner

तो क्या संबंधों को आंतरिक कहने का यह अर्थ स्वीकारा जा सकता है? मूर का कहना है कि इस अर्थ में भी सभी संबंधों को आंतरिक नहीं कहा जा सकता। अपनी इस बात के समर्थन में मूर कुछ तार्किक ढंगों का सहारा लेते हैं। हम बिना उस तार्किक विवेचना में प्रवेश किये मूर के विचारों को स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे।

ऊपर बताये अर्थ के अनुसार यदि 'य' एक संबंधसूचक लक्षण है तथा वह 'क' में है, तो कहा जा सकता है कि 'य' का 'क' के साथ आंतरिक संबंध है, क्योंकि जिसमें 'य' अनुपस्थिति रहेगा उसमें यह अनिवार्यतः आपादित है कि वह 'क' से भिन्न होगा—गुणात्मक दृष्टि से भिन्न होगा, तथा गुणात्मक दृष्टि से भिन्न होने के कारण संख्यात्मक दृष्टि से भी भिन्न होगा। मूर को यह बात सत्य प्रतीत नहीं होती। इसे उदाहरणों के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

एडवर्ड VII जॉर्ज V के पिता हैं। इसका अर्थ है कि एडवर्ड VII में जार्ज V के पिता होने का संबंधसूचक लक्षण विद्यमान है। यदि वह संबंध आंतरिक है तो ऊपर बताये अर्थ में इसका अर्थ है कि जिसमें जार्ज V के पिता होने का संबंधसूचक गुण नहीं है, वह संख्यात्मक दृष्टि से एडवर्ड VII से भिन्न है। किन्तु, यहाँ पर एक तार्किक कठिनाई है। एडवर्ड VII तो बिना जार्ज V के पिता हुए भी अस्तित्ववान् रह सकता है। इस बात से यह सिद्ध होता है कि जार्ज V के पिता हुए भी अस्तित्ववान रह सकता है। इस बात से यह सिद्ध होता है कि जार्ज V के पिता होने के गुण की अनुपस्थिति से यह अनिवार्यतः आपादित नहीं है कि जिसके यह गुण न होगा वह संख्यात्मक दृष्टि से एडवर्ड VII से भिन्न होगा। इस प्रकार आंतरिक संबंध को बतानेवाला ऊपर दिया वाक्य असत्य सिद्ध होता है।

इस बात को साधारण ढंग से भी दिखाया जा सकता है। यदि संबंधों के आंतरिक होने का अर्थ वही है जो ऊपर दिया गया है तो इसका यह अर्थ हो जाता है कि संबंधसूचक लक्षण पदों को संख्यात्मक दृष्टि से भिन्न बना देते हैं। किन्तु उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनमें ऐसा नहीं होता। 'कपड़े तथा उन धागों का संबंध जिसमें कपड़ा बना है'—इसका एक विपरीत उदाहरण है, कपड़े से अलग धागा संख्यात्मक दृष्टि से भिन्न नहीं है।शरीर से यदि हाथ को काट कर अलग कर दिया जाय तो हाथ संख्यात्मक दृष्टि से भिन्न नहीं हो जाता। अतः मूर के अनुसार इस अर्थ में भी सभी संबंधों को आंतरिक नहीं माना जा सकता।

संबंधों की आंतरिकता की समीक्षा एवं खंडन करते हुए भी मूर संबंधों के स्वरूप पर पूर्णतया निश्चित निष्कर्ष तो नहीं देते, किन्तु अपने ढंग से अपना मत व्यक्त करते हैं। रसेल के समान मूर भी यह कहते हैं, कि हर संबंध वस्तुतः संबंधित पदों के स्वरूप पर निर्भर है। उन पदों का अपना स्वरूप उसके सभी गुणों से निर्धारित होता हैं, किन्तु पदों के स्वरूप निर्धारण करनेवाले गुणों में संबंधसूचक गुण (relational properties) नहीं आते। पदों के अपने किसी गुण से कोई संबंधसूचक गुण आपादित नहीं है, किन्तु इसका विपरीत सही है। संबंधसूचक गुणों से पदों के कोई गुण आपादित होता है। 'एडवर्ड VII' के अपने किसी गुण में यह अनिवार्यतः निहित नहीं है कि वह 'जार्ज V' का पिता हो ही, किन्तु जार्ज V के पिता होने के संबंधसूचक गुण से एडवर्ड VII के एक गुण को सूचित किया जा सकता है। अतः संबंधों के स्वरूप पर मूर के मत में इतना तो कहा ही जा सकता है कि संबंध वस्तुतः संबंधित पदों के स्वरूप पर निर्भर हैं।

❑

Scanned with CamScanner